28.7.1 परंपरा का मूल्यांकन : साहित्य की परंपरा का ज्ञान

डॉ. रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी दृष्टि से परंपरा का मूल्यांकन करके यह सिद्ध करने का साहस किया कि मार्क्सवादियों पर 'परंपरा' के प्रति गैर-जिम्मेदारी का अभियोग लगाना गलत है। हिंदी में शिवदान सिंह चौहान, रांगेय राघव ने जिस ढंग से 'ब्राह्मणवादी परंपरा' कहकर तुलसी की परंपरा की छीछालेदर की थी, उसे पुनः प्रतिष्ठित करने का ज़ोरदार अभियान डॉ.शर्मा ने चलाया। उन्होंने कहा कि हिंदी जाति की जातीय भाषा हिंदी है - 'संसार का कोई भी देश बहुजातीय राष्ट्र की हैसियत से, इतिहास को ध्यान में रखे तो, भारत का मुकाबला नहीं कर सकता। यहाँ राष्ट्रीयता एक जाति द्वारा दूसरी जातियों पर राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करके कायम नहीं हुई। वह वस्तुतः संस्कृति और इतिहास की देन है। इस संस्कृति के निर्माण में इस देश के कवियों का स्थान सर्वोच्च है। इस देश की संस्कृति से 'रामायण' और 'महाभारत' को अलग कर दें, तो भारतीय साहित्य की आंतरिक एकता टूट जाएगी। किसी भी बहुजातीय राष्ट्र के सामाजिक विकास में कवियों की ऐसी निर्णायक भूमिका नहीं रही, जैसी इस देश में व्यास और वाल्मीकि की है। इसलिए किसी भी देश के लिए साहित्य की परंपरा का मूल्यांकन उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना इस देश के लिए है।' (परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 14-15)

गैर-मार्क्सवादी आलोचक लगातार यह भ्रम फैलाते रहे हैं कि समाजवादी संस्कृति, पुरानी संस्कृति से नाता तोड़ने की संस्कृति है। इस भ्रांति को दूर करने के लिए डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा - 'समाजवादी संस्कृति, पुरानी संस्कृति से नाता नहीं तोड़ती, वह उसे आत्मसात करके आगे बढ़ती है।' (परंपरा का मूल्यांकन) यह आत्मसात करने की प्रक्रिया विवेक वयस्कता की माँग करती है। 'जो लोग साहित्य में युग-परिवर्तन करना चाहते हैं जो लकीर के फकीर नहीं है, वे रूढ़ियाँ तोड़कर क्रांतिकारी साहित्य रचना चाहते हैं उनके लिए साहित्य की परंपरा का ज्ञान सबसे ज्यादा आवश्यक है।' इसी स्थिति के कारण 'जो महत्व ऐतिहासिक भौतिकवाद के लिए इतिहास का है, वही आलोचना के लिए साहित्य की परंपरा का है।..साहित्य की परंपरा के ज्ञान से ही प्रगतिशील आलोचना का विकास होता है।' कहना न होगा कि डॉ.शर्मा ने हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना का विकास इसी ढंग से किया। उनकी प्रगतिशील आलोचना किन्हीं अमूर्त्त सिद्धांतों का ज्ञान नहीं है, वह साहित्य की परंपरा का मूर्त्त ज्ञान है एवं यह ज्ञान उतना ही विकासमान है जितना साहित्य की परंपरा। श्रेष्ठ साहित्य में महान विचारों, गंभीर भावों, जनता के कष्टों और सूक्ष्म इन्द्रिय-बोध का समन्वय होता है - तुलसीदास साहित्य परंपरा के बड़े कवि हैं। साहित्य का मूल्यांकन शुद्ध विचारधारात्मक रूप से नहीं किया जा सकता, मानव के भाव-बोध, इन्द्रिय-बोध पर ध्यान देना आवश्यक है। इसी अर्थ में साहित्य अपने युग की

Scanned by CamScanner

अथव्यवस्था का यांत्रिक प्रतिबिंब नहीं है। हिंदी साहित्य का घनिष्ठ रिश्ता संस्कृत साहित्य और उसकी मानवतावादी परंपरा से है।

28.7.2 संस्कृत साहित्य और उसकी महान मानवतावादी परंपरा

डॉ.रामविलास शर्मा संस्कृत-साहित्य में 'भारत को एक राष्ट्र' समझने की महिमा के कारण ही रामायण-महाभारत, कालिदास-भवभूति के साहित्य का नए दृष्टिकोण से नया भाष्य करते हैं। संस्कृत साहित्य की सामंत-विरोधी भावना का नया रूप संत-साहित्य में पाते हैं। संस्कृत साहित्य में रीतिवाद काफी परत है पर हिंदी साहित्य में वीरगाथाकाल और रीतिकाल में काफी तगड़ा है।

संस्कृत साहित्य मे नवजागरण की अवधारणा को लेकर डॉ.शर्मा ने 'भारतीय नवजागरण और यूरोप' नाम से पुस्तक लिखी है। यहाँ नवजागरण से उनका तात्पर्य है - ऋग्वेद का रचनाकाल भारत में नए जागरण का युग है। यह नवजागरण अनेक बार आता है - उपनिषदों में कर्मकांड का विरोध हुआ। यह दूसरा नवजागरण था। सुकरात से पहले जो यूनानी दार्शनिक हुए हैं उनके अध्ययन करने से वे इस नतीजे पर पहुँचे कि उपनिषद के दर्शन से यूनानी परिचित थे। वे भारत आए थे, यहाँ के विद्वानों से मिले थे। हीगेल ने बहुत प्रयत्न किया कि इस सारी परंपरा का खंडन किया जाए और सिद्ध किया जाए कि ज्ञान-विज्ञान का प्रसार पहले यूनान में हुआ।

यूरोप में पुनर्जागरण के साथ अंधकार-युग की छूत-छाया एकसाथ हैं। जैसे अत्याचार प्रोटेस्टेंटों ने कैथोलिकों पर और कैथोलिकों ने प्रोटेस्टेंटों पर किए, वैसे अत्याचार हिंदू-मुसलमानों मे भिन्न धर्म होने पर भी नहीं हुए। अतः भारतीय सुधार-आंदोलनों का नवजागरण पश्चिम के सुधार आंदोलनों के नवजागरण से अपनी प्रकृति में भिन्न है। डॉ.रामविलास शर्मा ने इस पर बहुत एकाग्र चित्त से सोचा है कि क्यों विलियम जोन्स, मैक्समूलर, याकोबी और मैकडूनल आदि विद्वान संस्कृत साहित्य के साथ न्याय नहीं करते। यह साहित्य जिस समाज-व्यवस्था मे रचा गया उस पर विचार नहीं करना चाहते या विचार करते हैं तो पश्चिमी पूर्वाग्रहों के साथ। डॉ. रामविलास शर्मा ने ऋग्वेद, उपनिषद, आरण्यक ग्रंथों के साथ रामायण-महाभारत पर विचार किया। 'भारतीय साहित्य का इतिहास', 'आदिकाव्य', 'साहित्य में स्थायी मूल्यों की समस्या : कालिदास', 'नाटककार भवभूति', 'हिंदी जाति के सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा' में उन्होंने संस्कृत साहित्य की विशिष्टताओं को रेखांकित किया। रामायण 'आदि काव्य' हो या न हो किंतु वह भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत अवश्य है। 'वाल्मीकि उस काव्य परंपरा को जन्म दे रहे थे जो देवोपासक नहीं, बड़ी गहराई से मानवतावादी है।' वाल्मीकि काव्य के आरंभ में किसी देव-वंदना के चक्कर मे नहीं पड़ते। हाँ, यह अवश्य घोषित करते हैं कि यह काव्य द्विजों के लिए ही नहीं शूद्रों के लिए भी है। याकोबी वाल्मीकि की कविता पर होमर का प्रभाव सिद्ध करते हैं। यह सब एक कुचक्र का अंग है। कालिदास की स्वच्छंद मानव प्रेम-भावना, सौंदर्य-चेतना ने पूरे भारतीय साहित्य पर प्रभाव डाला। स्वयं पश्चिमी स्वच्छंदतावाद के आदि स्रोत उपनिषदों तथा कालिदास के काव्य में मिलते हैं। अपने निबंध 'नाटककार भवभूति' में डॉ. शर्मा ने भवभूति के आविर्भाव को 'नए युग का सूत्रपात' कहा। 'मालती माधव' और 'उत्तर रामचरित' अपने मूल प्रभाव में ट्रेजेडी हैं। 'शेक्सपियर के नाटकों का युगांतरकारी महत्व यह है कि व्यवस्था मूलतः मानव-कृत है और कर्म और दुख के लिए मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है, वह जिस न्याय व्यवस्था से टकराता है, वह देव-निरपेक्ष है। यूरोप में यह नवजागरण का युग है, प्राचीन नियतिवाद से मुक्त होकर कवि नए मानवतावाद का विकास करते हैं। शेक्सपियर से नौ सौ वर्ष पहले भारत में यह काम भवभूति ने किया।' (परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 31) आचार्य शुक्ल की 'करुणा' और निराला की 'त्रासदी' को भवभूति से जोड़ते हुए कहा - 'आलोचना के क्षेत्र में भवभूति के समानधर्मा आ.शुक्ल हैं जैसे काव्य में उनके समानधर्मा निराला हैं।' (वही) दुःख और पराजय के अनुभव के साथ-साथ जहाँ मनुष्य पूरी शक्ति के साथ संघर्ष करता है वहीं उदात्त की सृष्टि होती है। सार-संक्षेप यह कि डॉ.शर्मा ने संस्कृत की मानवतावादी सामंत-विरोधी मूल्य-दृष्टि को उसके सामाजिक आधार के साथ उजागर किया है।

28.7.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की विरासत का मूल्यांकन

हिंदी आलोचना के क्षेत्र में आचार्य शुक्ल अपने ढंग के प्रथम मौलिक चिंतक और सिद्धांतकार हैं। उन्होंने भाववादी-परलोकवादी आध्यात्मिक चिंतन का निषेध कर नए वैज्ञानिक चिंतन का विकास किया। हैकल की पुस्तक 'विश्व-प्रपंच' के विचारों का उनपर गहरा असर पड़ा। नए ज्ञान-विज्ञान के आलोक में आ.शुक्ल ने हिंदी के नए समीक्षाशास्त्र की नींव रखी। इस नींव को कुछ संकीर्णतावादी मार्क्सवादियों ने खोखला करने की कोशिश की। स्वयं आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी तथा नन्द दुलारे वाजपेयी ने आ.शुक्ल के चिंतन पर प्रहार किया। इस स्थिति की भयावहता को देखते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' (1955) तथा 'लोकजागरण और

Scanned by CamScanner

आ.रामचन्द्र शुक्ल' (1989) में स्थापित किया है कि आ.हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा उनकी शिष्य-परंपरा की बहुत विध्वंसात्मक आलोचना है - हनुमान-भाव से अशोकवाटिका का विध्वंस। मूल स्थापना डॉ.शर्मा जी की वही है जो 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' में थी कि आ.शुक्ल लोकजागरणवादी, सामंत-विरोधी, साम्राज्यवाद विरोधी आलोचक हैं। आ.शुक्ल की इसी विरासत को आ.शर्मा ने आगे बढ़ाया है - पूरे संकल्प के साथ। वे आ.शुक्ल के सच्चे उत्तराधिकारी कहे जा सकते हैं। जैसा रीतिवादविरोधी अभियान आ.शुक्ल ने अपनी आलोचना में चलाया था, वैसा ही रीति-विरोधी अभियान डॉ.रामविलास शर्मा जी जीवन-भर चलाते रहे।

पादरियों के धर्म का खंडन करने वाले जगत विख्यात प्राणितत्ववेत्ता हैकल की पुस्तक 'रिडिल ऑफ दि यूनिवर्स' (विश्व प्रपंच) को अनुवादक शुक्ल ने 'अनात्मवादी आधिभौतिक पक्ष का सिद्धांत-ग्रंथ' कहा तथा एक लंबी भूमिका लिखी। इस भूमिका पर डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है :

1. उनकी भूमिका पुस्तक का अभिप्राय समझने ही में सहायक नहीं होती, उन्होंने हैकल के बाद की वैज्ञानिक प्रगति का उल्लेख करके मूल विवेचन को अपने युग के पाठक के लिए पूर्ण बनाया है। भूमिका के प्रथम भाग में आधुनिक भौतिकशास्त्र (Physics) के कतिपय तत्वों का परिचय है। उसके बाद जीवविज्ञान (Biology) और डारविन के विकासवाद का विस्तृत विवेचन है। अंतिम अंश में भौतिकवाद और भाववाद (या अध्यात्मवाद) के विभिन्न पक्षों का उल्लेख है। इसके साथ रसायनशास्त्र, भूगर्भशास्त्र आदि अन्य विज्ञानों का प्रसंगानुसार जिक्र आया है। संसार के प्रति हमारा दार्शनिक दृष्टिकोण क्या हो - इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हिंदी में पहली बार इतने विस्तार से विज्ञान का अध्ययन किया गया है।....भारतीय समाज के विकास का अध्ययन करने के लिए महाभारत के महत्व की ओर संकेत किया गया और उसरो अध्ययन पद्धति के लिए बहुत ही वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाले गए हैं।' (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, द्वि.सं., पृ. 11)
2. 'शुक्ल जी पौराणिक कथाओं के विरोधी हैं और विकासवाद के समर्थक'
3. शुक्लजी का दृष्टिकोण पुनरुत्थानवादियों और अंध-श्रद्धालुजनी उपासना पद्धति से बिल्कुल भिन्न है।
4. भौतिकवाद, विकासवाद, जनता से संबंध आदि शब्द सुनते ही अनेक मित्र यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि शुक्लजी को मार्क्सवादी घोषित किया जा रहा है। ऐसे मित्रों की सेवा में निवेदन है कि शुक्लजी की विचारधारा और मार्क्सवाद में काफी अंतर है।....मार्क्सवाद के लिए इतिहास में वर्ग-संघर्ष की नियामक भूमिका है, वर्गों का निर्माण और उनके परस्पर संबंध उत्पादन और वितरण की पद्धति से कायम होते हैं।...इसलिए शुक्लजी को मार्क्सवादी घोषित करने का सवाल नहीं उठता। ईमानदारी का यह तकाज़ा जरूर है कि शुक्ल जी अपने युग के हिंदी अहिंदी विचारकों से कितना आगे थे और उनकी विचारधारा कितनी वैज्ञानिक है इसे अब हम स्वीकार करें।

हिंदी आलोचना में एक समय ऐसा भी था जब आचार्य शुक्ल को विरासत से वंचित करने का शुक्ल-विरोधी अभियान चलाया जा रहा था। इस अभियान में संकीर्णतावादी मार्क्सवादी शिवदान सिंह चौहान, रांगेय राघव जैसे लोग शामिल थे। शिवदान सिंह चौहान शुक्ल जी पर 'एकांगी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण' का आरोप लगा रहे थे और रांगेय राघव कह रहे थे 'शुक्ल जी ने इतिहास को शुद्ध ब्राह्मण दृष्टिकोण से देखा है।' डॉ. नामवर सिंह कह रहे थे - 'शुक्ल जी के इतिहास में सामाजिक परिस्थितियाँ तथा साहित्यकार अलग-अलग रखे जाने पर एक-दूसरे से अलग हैं।' (आलोचना, 4 अक्तूबर, 1952) आ.शुक्ल के 'लोक-धर्म' को 'वर्णाश्रम-धर्म' का पर्याय घोषित करते हुए आ.हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'लोक-धर्म' को निम्न-वर्ग की जनता का उदार धर्म कहा जा रहा था। इस आ.शुक्ल विरोधी अभियान से डॉ. रामविलास शर्मा ने टक्कर ली और विरोधियों का टाट पलट लिया। डॉ.शर्मा ने आ.शुक्ल-विरोधी बहुत से आलोचकों का मत देकर 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' पुस्तक के प्रथम लेख 'साहित्य और लोक-जीवन' में लिखा 'शुक्ल जी की विरासत का मूल्यांकन और उसकी रक्षा क्यों महत्वपूर्ण है, यह दिखाने के लिए कुछ उद्धरण काफी हैं।' शुक्ल जी के योगदान का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने कहा :

1. 'काव्य के बारे में अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, ध्वनि और रस - ये चार सम्प्रदाय यहाँ प्रचलित रहे हैं। इनमें से शुक्ल जी का संबंध रस-सम्प्रदाय से है। भरत से उन्होंने रस-निष्पत्ति का सिद्धांत लिया है, लेकिन संस्कृत के आचार्यों की रस-संबंधी व्याख्याएँ मान्य नहीं हैं।' (पृ. 33)
2. 'मानव-जीवन में भावों का प्रकृत रूप साहित्य में आकर बदल नहीं जाता शुक्ल जी के तर्क की यह आधारशिला है।.... शुक्ल जी की मौलिक मान्यता यह है कि साहित्य के भावों और जीवन के भावों में बुनियादी अंतर नहीं है। ', (वही)

Scanned by CamScanner

3. 'आचार्य शुक्ल रस-दशा को लोक-हृदय में लीन होने की दशा कहते हैं, लेकिन यह कोई निष्क्रिय दशा नहीं है। भावों का काम है - मनुष्य को कर्मों में प्रवृत्त करना।'
4. 'उन्होंने हर तरह की संकुचित व्यक्तिवादी और भाववादी धारणाओं से साहित्य को मुक्त करके उसे सामाजिक जीवन का एक अंग बना दिया है। इसलिए लोक हृदय, लोक मंगल या लोक हित को दर किनार करके साहित्यकार आगे नहीं बढ़ सकता।' (पृ. 34)
5. 'पश्चिमी कलावादियों की तरह शुक्ल जी साहित्य को मनुष्य की क्रीड़ा वृत्ति (प्ले इम्पल्स) का परिणाम नहीं मानते। फ्रायड आदि पश्चिमी मनोविश्लेषण के आचार्यों की काम-वासना और स्वप्न संबंधी स्थापनाओं को वे नहीं मानते।' (पृ. 36)
6. 'शुक्ल जी ने यूरोप के अभिव्यंजनावादियों का विरोध किया जो काव्य के वास्तविक आधार को ही अस्वीकार करते थे।' (पृ. 36)
7. 'आचार्य शुक्ल ने हिंदी में पहली बार जमकर रीति ग्रंथों का विरोध किया, साहित्य पर उनके घातक प्रभाव का उल्लेख किया।... शुक्ल जी यथार्थवाद की भूमि से रीति-ग्रंथों की कृत्रिमता दिखाते हैं।'
8. 'शुक्ल जी ने अपने सिद्धांत हवा में नहीं बनाए, न वे सिद्धांत केवल निषेधात्मक हैं। उन्होंने भारतवर्ष के चार महाकवियों - वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति और तुलसीदास - को अपना आदर्श और आधार बनाया। ..... शुक्ल जी ने साहित्य में वाल्मीकि और भवभूति की परंपरा को फिर जगाया।' (पृ. 38)
9. 'शुक्ल जी सामंती संस्कृति के ही विरुद्ध नहीं हैं। वे यूरोप की बर्बर साम्राज्यवादी संस्कृति का भी विरोध करते हैं। मध्यकालीन आक्रमणकारियों से यूरोप के व्यापारियों की तुलना करते हैं।' (पृ.41)
10. 'आचार्य शुक्ल ने 'रीतिकलीन साहित्यशास्त्र का विरोध किया, साहित्य को धनी वर्ग का सेवक बनने से रोका, उन्होंने सामंती संस्कृति और साम्राज्यवादी उत्पीड़ीन का सच्चा रूप दिखाया, पश्चिमी व्यक्तिवाद और निराशावाद से बचने की चेतना दी, निष्क्रिय प्रतिरोध, तोल्स्तोय पंथ, रहस्यवाद और अध्यात्म की पुकार का रहस्य प्रकट किया और अन्याय और अत्याचार के दमन में सौंदर्य की प्रतिष्ठा की। इस तरह उन्होंने साहित्यकार को जनता का पक्ष लेना सिखाया और नए साहित्य में अपनी ऐतिहासिक भूमिका अदा की।' (पृ. 45)
11. 'शुक्ल जी की तर्क पद्धति द्वंद्वात्मक है। वह वस्तुओं और विचारों की गतिशीलता पर ज़ोर देते हैं।' (पृ.46)
12. 'शुक्ल जी सामंती साहित्यशास्त्र का टाट पलटकर हिंदी का अपना शास्त्र रच रहे थे।'

आ.शुक्ल के इस चिंतन ने डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना-दृष्टि को प्रेरित-प्रभावित किया है। वे आ.शुक्ल की विरासत को हर कीमत पर आगे बढ़ाने के लिए संघर्ष करते रहे हैं। विरोधियों के लिए उनका यह कहना ठीक है - 'हिंदी में अब जनता के वास्तविक जीवन को प्रतिबिंबित करने वाला, उसकी आशाओं और संघर्षों को मूर्त रूप देने वाला साहित्य अधिकाधिक रचा जा रहा है। यही कारण है कि कुछ लोग शुक्ल जी की विरासत मिटाने पर तुल गए हैं क्योंकि यह विरासत नए साहित्य के निर्माण के लिए निरंतर प्रेरणा देती है। ... निस्संदेह जनवादी और स्वाधीन भारत में सुखी और शिक्षित जनता के समृद्ध जीवन के आधार पर नए जन-साहित्य के निर्माण द्वारा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह पुनीत मनोकामना पूरी होगी।' (पृ.49) आ.शुक्ल की इस पुनीत मनोकामना को पूरा करने के संकल्प का नाम है - डॉ. रामविलास शर्मा।

Scanned by CamScanner